अनवरत शांति और धर्मयुद्ध

अशोक वोहरा

स्थायी शांति की सम्भावना में आस्था न रखना मानव स्वभाव की दिव्यता में अविश्वास है।
—गाँधी, *हरिजन*, 24 दिसम्बर, 1938

मानव इतिहास युद्धों, या युद्ध की धमकियों से भरा पड़ा है। युद्ध विरल न हो कर एक आम बात हो गये हैं। जवाहर लाल नेहरू ने भोपाल के नवाब को नौ जुलाई को लिखे अपने एक पत्र में लिखा, 'अब शांति की कोई सम्भावना नहीं है। ... केवल युद्ध का रास्ता ही बचा है।' युद्धों को रोकने के लिए और शांति की स्थापना के लिए हमें सचेत प्रयास करने पड़ते हैं। यद्यपि युद्ध और अशांति मनुष्यों की नैसर्गिक प्रकृति है, फिर भी शांति के लिए उसे निरंतर प्रयास करते रहना पड़ता है। शांति को बनाए रखना पड़ता है। इस सचेत प्रयत्न के मामले में शांति सत्य जैसी

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 104

होती है। सत्य को प्रचारित करना पड़ता है, उसे सहारे की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर झूठ बिना सहारे के ही फैल जाता है। झूठ के पंख होते हैं। कहावत है कि 'जब तक सत्य अपने जूते पहन ही रहा होता है, तब तक झूठ आधी दुनिया में फैल जाता है।' यह सच है कि हम शांति को सदैव बनाए रखना चाहते हैं, किंतु यह भी सच है कि कुछ स्वार्थी तत्त्व निर्दोष नागरिकों पर निरंतर आक्रमण करते रहते हैं और उन्हें और उनके राष्ट्र को 'सुनिश्चित, गम्भीर और दूरगामी' क्षति पहुँचाते रहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने बचाव, सम्पत्ति और सम्मान की रक्षा तथा शांतिपूर्ण व्यवस्था बनाए रखने के लिए हमें ऐसे स्वार्थी तत्त्वों से युद्ध करना पड़ता है। ऐसे युद्ध हम पर थोपे जाते हैं। ऐसे प्रतीकात्मक युद्धों के समर्थन में संत ऑगस्टीन कहते हैं, 'हम शांति की खोज युद्ध करने के लिए नहीं करते, अपितु ऐसे युद्ध करने के लिए हम बाध्य होते हैं ताकि हम शांतिपूर्ण समाज का निर्माण कर सकें। अत: युद्ध की स्थिति में भी शांत रहें, ताकि आप अपने विरोधियों पर जीत पाकर उन्हें शांतिपूर्ण समाज की सम्पन्नता में शामिल कर सकें।

इमानुएल कांट के अनुसार, 'प्रत्येक राज्य या उसके शासक की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसके राज्य में स्थायी शांति बनी रहे।' युरोप के इतिहास में लड़े गये अनेक युद्धों का उदाहरण देते हुए, और अपने समकालीन युरोपीय अनुभव के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्थायी शांति की इस इच्छा को पाने के लिए सभी राज्य या सभी राज्याध्यक्ष 'सारे संसार को अपने अधीन करना चाहते हैं।'[1] प्रत्येक राज्य या राज्याध्यक्ष अन्य राज्यों या राज्याध्यक्षों को अपनी ओर झुकाना चाहता है। वह बलपूर्वक उन्हें अपने अधीन करता है, और फिर उस पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। संसार पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए पहले तो वह अपने नज़दीकी पड़ोसी राज्यों पर आधिपत्य जमाता है, और अंतत: विश्व के अन्य राज्यों पर अपना अधिकार जमा लेता है।

समकालीन विश्व में सीरिया, इराक, अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, अमेरिका, इंग्लैंड, पेरिस की वर्तमान युद्ध या युद्ध के समान परिस्थितियों में प्रतिशोधात्मक युद्ध की विवेचना करना पहले से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उत्तरी कोरिया के शासक और उस जैसे कई अन्य तानाशाह, जो हमेशा यह धमकी देते रहते हैं कि वे अपने विरोधियों, वस्तुत: सारे संसार को अपने पास उपलब्ध जैविकीय, आणविक, और रासायनिक अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से नष्ट कर देंगे, के संदर्भ में प्रतिशोधात्मक युद्ध पर चर्चा करना एक आवश्यकता बन जाता है। आतंकवादियों द्वारा 'विषम या असममित' युद्ध प्रणाली अपनाने के कारण प्रतिशोधात्मक युद्ध पर विचार-विमर्श और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। 'विषम या असममित' युद्ध प्रणाली वह होती है जिसमें एक पक्ष तो गुरिल्ला या आतंकवादी पद्धति अपनाता है, जबकि दूसरा पक्ष युद्ध की पारम्परिक पद्धति अपनाता है। यह जानते हुए भी कि युद्ध में अनेक बहुमूल्य जीवन बलिदान हो जाते हैं, और पर्यावरण का विनाश हो जाता है— आतंकवाद की भीषण स्थिति में प्रतिशोधात्मक युद्ध आवश्यक हो जाता है। उन परिस्थितियों का विवरण देते हुए जिनमें युद्ध करना अनिवार्य और न्यायोचित हो जाता है, अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति ओबामा कहते हैं, 'यदि आवश्यक हो तो अमेरिका, एकतरफ़ा सैनिक कार्रवाई करने से भी नहीं हिचकिचाएगा यदि उसके नागरिकों को धमकियाँ दी जाएँगी; जब उसके नागरिकों का जीवन ख़तरे में पड़ जाएगा; और जब उसके सहयोगी राष्ट्रों की सुरक्षा ख़तरे में होगी। उस स्थिति में हम अपने आप से यह प्रश्न नहीं करेंगे कि हमारी कार्रवाई संतुलित, औचित्यपूर्ण, और न्यायसंगत है या नहीं।' वे अपने भाषण में आगे कहते हैं, 'जिसे ग़लतियाँ करने से रोका जाना है उस पर क़ाबू पाना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि पापियों के सुख से अधिक कोई दु:ख नहीं है।' पापियों के सुख का हरण होना ही चाहिए, चाहे इसके लिए कितनी भी कठोर कार्रवाई क्यों न करनी पड़े। आतंकवाद पर क़ाबू पाना आवश्यक है क्योंकि इससे बुराई रुकती है और निरीह प्राणियों की रक्षा होती है। ऐसा युद्ध औचित्यपूर्ण और अनिवार्य होता

[1] इमानुएल कांट *(1972)* : 156.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 105

है, क्योंकि इससे सब की भलाई होती है।

ऐसा युद्ध, धर्मयुद्ध कहलाता है। कांट के अनुसार ऐसे युद्ध में भाग लेना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है, क्योंकि अंतत: ऐसे युद्ध का उद्देश्य चिरस्थायी शांति से प्रेम करने वाले संसार की स्थापना करना होता है। धर्मयुद्ध, बुद्ध के 'मध्य मार्ग' और अरस्तू के 'स्वर्णिम मध्य' का एक उदाहरण है। धर्मयुद्ध यथार्थवाद और शांतिवाद के बीच का मार्ग है। यथार्थवाद युद्ध को एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानता है जो एक अनिवार्य बुराई है। इस बुराई का स्रोत मनुष्य का सहज स्वभाव है, मनुष्य में अंतर्निहित उसका डीएनए है। शांतिवादियों के अनुसार युद्ध किसी भी सूरत में स्वीकार्य नहीं होता। शांतिवाद का मूल सिद्धांत है : बुराई का सामना मत करो। यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो। धर्मयुद्ध आत्मरक्षात्मक कार्रवाई है। यह कोई युद्ध नहीं है। धर्मयुद्ध से इतर युद्ध वाणिज्यिक कारणों से लड़े जाते हैं। कांट के अनुसार 'वाणिज्य, उद्योग, और व्यापार को बढ़ाने की ख़ातिर युद्ध लड़े जाते हैं। आक्रमणकारी के पास चाहे अपने आस पास के राज्यों की कुल सम्पत्ति से कहीं अधिक सम्पत्ति हो, फिर भी उसे यह आशंका भयभीत करती रहती है कि उसकी अपनी सम्पत्ति कम है।'[2] युद्ध के सभी कारणों में कांट को धन-दौलत का लालच सबसे महत्त्वपूर्ण कारण प्रतीत होता है। उनके अनुसार 'शास्त्रों की ताक़त, गठबंधन की ताक़त, धन की ताक़त, इन तीनों ताक़तों में धन की ताक़त ही युद्ध का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है।'[3] यह केवल प्रासंगिक नहीं है कि पारम्परिक भारतीय दर्शन में भी युद्ध के कारणों में तीन 'ज' ही प्रमुख हैं। ये हैं ज़र, यानि धन-दौलत; जोरू, यानी औरत; और ज़मीन, यानी भूमि। इन सब में भी धन-दौलत को ही सभी युद्धों की जड़ माना गया है।

कांट की यह मान्यता है कि युद्ध और संघर्ष मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था है। वे मानते हैं कि 'हो सकता है कि वास्तव में सदैव ख़ुली युद्धस्थिति न हो, किंतु युद्ध की सम्भावना का डर हमेशा बना रहता है।' ऐसा हो सकता है कि किसी समय में कोई युद्ध न लड़ा जा रहा हो, और दो लोगों, समाजों, राज्यों अथवा राष्ट्रों में विद्वेष समाप्त हो गया हो, किंतु केवल इससे हम 'शांतिपूर्ण संबंधों के प्रति आश्वस्त नहीं हो सकते।' जब तक 'प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी को शांतिपूर्ण संबंधों कि लिए आश्वस्त नहीं करता ... तब तक प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को चुनौती दे सकता है और उसे अपना शत्रु समझ सकता है।' शांतिपूर्ण संबंधों की आश्वस्ति प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले व्यक्ति एक-दूसरे को नहीं दे सकते बल्कि यह आश्वस्ति 'विधिसम्मत समाज' में ही दी जा सकती है।

महाभारत का युद्ध पाण्डवों को कौरवों से अपने उचित अधिकारों को प्राप्त करने के लिए लड़ा गया। चक्रवर्ती राजा बनने के लिए जो ख़ूनी युद्ध लड़े गये उन्हें भी धर्मयुद्ध ही कहा जाता है। अपने धर्म से अन्य धर्मों वाले राज्यों पर, उन्हें अपने धर्म में धर्मांतरण के लिए बाध्य होने के लिए, जो युद्ध उन पर थोपे जाते हैं उन्हें भी धर्मयुद्ध कहा जाता है। जेहाद और क्रूसयुद्ध भी धर्मयुद्ध के उदाहरण हैं। इस आलेख में मेरा उद्देश्य इस प्रश्न का उत्तर खोजना है : क्या धर्मयुद्ध संसार में चिरस्थायी शांति स्थापित करने में सहायक हो सकते हैं? अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मैं 'शांति' और 'धर्मयुद्ध' की अवधारणाओं के विश्लेषण से इसका आरम्भ करूँगा। इसके निष्कर्ष में मैं

[2] वही : 112.

[3] वही : 111.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 106

उन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण दूँगा, जो मेरे विचार में, संसार में चिरस्थायी शांति स्थापित करने में सहायक होंगी।

प्लेटो के प्रधान सद्‌गुणों की भाँति शांति भी एक ऐसी स्थिति है जिसके बिना कोई भी, किसी भी उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन को समृद्ध करने वाली, शिशु की मुस्कान जैसी, परिवार और समाज को एकजुट रखने वाली, मनुष्य की प्रगति, नैतिकता, सत्य की विजय और शुचिता की कारक, या यूँ कहें कि जो उत्तम जीवन की पूर्व-मान्यता शांति को पाने और उसे बनाए रखने के लिए हमें निरंतर प्रयासरत रहना पड़ता है। यद्यपि प्लेटो कहते हैं कि 'हमें अपना अधिकतर जीवन शांतिपूर्ण परिस्थितियों में शांतिपूर्वक बिताना चाहिए',[4] फिर भी वे अपनी पुस्तकों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं करते कि शांति की अवधारणा क्या है। नीचे मैं शांति की अवधारणा का विश्लेषण करूँगा।

नकारात्मक रूप से युद्ध के अभाव, या हिंसा के अभाव के रूप में, या फिर सकारात्मक रूप से राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के रूप में शांति को साधारणत: परिभाषित किया जाता है। यद्यपि यह परिभाषा शांति के सामाजिक आयाम को तो आत्मसात् करती है, परंतु यह परिभाषा शांति के वैयक्तिक और निजी पक्ष को उजागर नहीं करती। जो व्यक्ति आंतरिक रूप से शांत नहीं है, वह शेष संसार के साथ शांत व्यवहार नहीं कर सकता— चाहे वह उसका अपना परिवार हो, उसका समुदाय हो, गाँव हो, समाज हो, या राष्ट्र हो, या फिर अन्य दूसरे राष्ट्र हों। अन्य सद्‌गुणों के समान शांति के भी संज्ञानात्मक और मूल्यांकनात्मक पहलू होते हैं। व्यक्ति की मानसिक स्थिति से वैयक्तिक शांति का संज्ञानात्मक पक्ष बनता है। व्यक्ति या समाज शांति की अपनी समझ को बनाए रखने के लिए या उसे बढ़ावा देने के लिए जिन संस्थाओं को अपनी मनोस्थिति के अनुसार बनाता है, उनसे शांति का मूल्यांकन पक्ष उजागर होता है।

वैयक्तिक शांति के नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्ष होते हैं। विचलित करने वाली इच्छाएँ, लोभ, कामवासना और दुर्वासना शांति की अवधारणा के नकारात्मक पक्ष हैं। कांट इन्हें 'आंतरिक व्याधि' या 'आंतरिक संघर्ष' का नाम देते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की ये स्वाभाविक नकारात्मक प्रवृत्तियाँ 'चिरस्थायी शांति की रहने की सबसे बड़ी अड़चनें हैं।'[5] इन प्रवृत्तियों पर दक्षतापूर्व क़ाबू पाना ही शांति का सकारात्मक पक्ष नहीं है, अपितु उन्हें सही दिशा देना भी उसका भाग है। पूर्व और पश्चिम के लगभग सभी दार्शनिकों का यह मत है कि मन की यह सकारात्मक स्थिति मनुष्यों की कोई स्वाभाविक स्थिति नहीं है। इन सभी दार्शनिकों का यह मानना है कि वैयक्तिक शांति के लिए हमें संघर्ष करना पड़ता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें कोशिश करनी पड़ती है। गॉस्पल के अनुसार शांति 'एक ऐसा वरदान है जिसे खोजना पड़ता है, जिसे सुरक्षित रखना पड़ता है।' थॉमस अकुइनेस के शब्दों में शांति 'ईश्वर की देन है और वह इस जन्म में ही प्राप्य है।' वह 'प्राप्य' है उसे प्राप्त किया जा सकता है, वह कोई प्राकृतिक स्थिति नहीं है। वह कोई ऐसी स्थिति नहीं है जो प्रदत्त हो, जो प्राकृतिक हो, जो विद्यमान हो, जो तत्काल उपलब्ध हो। शांति की स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें संघर्ष, बल्कि कड़ा संघर्ष, करना पड़ता है। कांट भी इस बात का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'साथ-साथ रहने वाले मनुष्यों कि बीच शांति कोई प्राकृतिक स्थिति नहीं है (स्टेट्स नॅचुरलिस)।'[6] उनके अनुसार राज्यों और राष्ट्रों की भी यही स्थिति है। उनका कहना है कि 'राज्यों के समान राष्ट्रों को भी प्राकृतिक यानी कृत्रिम बाह्य नियमों से अनियंत्रित समाज में पास-पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों जो एक-दूसरे को अपनी नज़दीकियों के कारण नुक़सान पहुँचाते हैं उनकी कसौटियों

---

[4] प्लेटो, *द रिपब्लिक,* बुक VII, 803r, 803r

[5] कांट, वही : 112.

[6] वही : 117-119.

पर ही परखना चाहिए।'[7] वस्तुतः, कांट के मतानुसार जनसंख्या के एक समान वितरण के लिए युद्ध प्रकृति का एक साधन है। आधुनिक जगत में हम जनसंख्या का ऐसा समान वितरण पाते हैं। उनके अनुसार 'युद्ध के कारण ही मनुष्य सभी दिशाओं में बिखर गये हैं। वे ऐसी जगह भी पहुँच गये हैं जहाँ का पर्यावरण मनुष्य के रहने के क़ाबिल नहीं है। इसलिए ऐसे अप्रीतिकर स्थानों पर भी मनुष्य बस गये हैं।'[8] वे आगे कहते हैं कि 'सम्भवतः, केवल और केवल युद्ध के कारण ही मनुष्य ऐसे निर्जन अप्रीतिकर वातावरण वाले इलाक़ों में बस गये हैं।'[9]

शांति की अवस्था का 'निर्माण करना पड़ता है।'[10] वस्तुतः, कांट की यह मान्यता है कि युद्ध और संघर्ष मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था है। वे मानते हैं कि 'हो सकता है कि वास्तव में सदैव खुली युद्धस्थिति न हो, किंतु युद्ध की सम्भावना का डर हमेशा बना रहता है।'[11] ऐसा हो सकता है कि किसी समय में कोई युद्ध न लड़ा जा रहा हो, और दो लोगों, समाजों, राज्यों अथवा राष्ट्रों में विद्वेष समाप्त हो गया हो, किंतु केवल इससे हम 'शांतिपूर्ण संबंधों कि प्रति आश्वस्त नहीं हो सकते।'[12] जब तक 'प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी को शांतिपूर्ण संबंधों कि लिए आश्वस्त नहीं करता ... तब तक प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को चुनौती दे सकता है और उसे अपना शत्रु समझ सकता है।'[13] शांतिपूर्ण संबंधों की आश्वस्ति प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले व्यक्ति एक-दूसरे को नहीं दे सकते बल्कि यह आश्वस्ति 'विधिसम्मत समाज'[14] में ही दी जा सकती है। अतः, कांट के अनुसार वैयक्तिक शांति की व्यवस्था के लिए भी समाज या राज्य एक पूर्व मान्यता है। उनके अनुसार यद्यपि 'राज्य वह भूमि नहीं होती जिस पर वह स्थित होता है, वह कोई भूमि-खण्ड नहीं होता। वह व्यक्तियों का एक ऐसा समाज होता है जिसे उस राज्य के अलावा किसी को भी न तो आदेश देने का अधिकार होता है, न ही उसके प्रबंधन का।'[15] इससे यह पता चलता है कि भारतीय मत के विपरीत कांट की मान्यता है कि 'मनुष्य समाज का गठन नहीं करता, अपितु समाज मनुष्य का निर्माण करता है।' यही कारण है कि कांट ऐसी संधियों

तीस जनवरी को *यंग इंडिया* में लिखे अपने लेख में गाँधी ने इसी बात को निम्नलिखित शब्दों में कहा, 'संसार में शांति स्थापना मनुष्यों के दिलों में अहिंसा और शांति की लौ जला कर ही की जा सकती है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसे ही राष्ट्र होंगे। और जैसे राष्ट्र होंगे वैसा ही संसार होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि परमाणुओं का एक नियम हो और जगत का कोई और नियम हो।' ... बुद्धि से नहीं बल्कि हृदय से प्रेरित होते हैं। पहले दिल किसी निष्कर्ष को स्वीकारता है, फिर बुद्धि उस निष्कर्ष के युक्ति-युक्त तर्क ढूँढ़ लेती है। विश्वास पहले होता है फिर तर्क? मनुष्य जो नहीं करना चाहता अकसर उसके कारण खोज लेता है। गाँधी की यह मान्यता थी कि राष्ट्रों में संघर्षों और घृणा का मूल कारण अज्ञान है।

[7] वही : 128.
[8] वही : 147.
[9] वही : 148.
[10] वही.
[11] वही.
[12] वही.
[13] वही.
[14] वही.
[15] वही : 15, इसका एक अन्य अनुवाद हो सकता है : राज्य कोई ऐसी सम्पत्ति नहीं हो सकता जिस पर लोग बसते हों. राज्य मनुष्यों का स्वायत्त समाज होता है.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 108

पर दस्तख़त करने, जिनसे 'युद्ध का अंत हो जाए', और ऐसी प्रसंविदाओं पर हस्ताक्षर करने जिनसे 'सदैव के लिए युद्ध का अंत हो जाए' को शांति बनाए रखने का मुख्य उपाय मानते हैं।'[16]

कांट और अन्य अनेक पश्चिमी दार्शनिकों की तरह राधाकृष्णन भी मानते हैं कि 'शांति अधिकार में आयी हुई कोई वस्तु नहीं है, अपितु वह तो निरंतर बने रहने वाली चाहत है।'[17] इसी प्रकार भारतीय ऋषि-मुनियों की भी यह मान्यता है कि शांत मन:स्थिति प्राप्त करने कि लिए हमें निरंतर प्रयासरत रहना पड़ता है। शांत मन:स्थिति की प्राप्ति मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श है। उनके अनुसार आत्मसंयम और लोकातीत दूरदृष्टि ही शांत मन:स्थिति की प्राप्ति के साधन हैं। दर्शन के कुछ मतों के अनुसार ऐसी मन:स्थिति किसी संबंधित विचार को आत्मसात् करके अथवा उसके प्रति पूर्ण समर्पण से प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यह समर्पण किसी देवता या ईश्वर के किसी रूप, या गीता, बाइबिल या क़ुरान जैसे किसी ग्रंथ के प्रति हो सकता है। अथवा कर्म-सिद्धांत जैसे किसी नियम को अपनी जीवन-शैली बना कर; या आत्म-ज्ञान या जगत-ज्ञान से; या फिर इन सब को मिला कर ऐसी मन:स्थिति पाई जा सकती है। दर्शन के अन्य मतों के अनुसार यह मन:स्थिति उनके द्वारा दिखाए गये मार्ग पर चल कर प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ, बौद्ध दर्शन के अनुसार इस मन:स्थिति को पाने के लिए हमें निम्नलिखित विचारों पर ध्यान देना होगा :

> 'उसने मुझे अपशब्द कहे, उसने मुझे पीटा, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया'— जो ऐसा सोचते रहते हैं उनमें दूसरों कि प्रति घृणा कभी भी समाप्त नहीं होती।
> संसार में घृणा कभी भी घृणा से समाप्त नहीं होती; घृणा का अंत अशत्रुता से होता है। यह एक प्राचीन नियम है।
> हममें से अधिकतर लोग ये नहीं समझते कि किसी दिन हम सब यहाँ नहीं होंगे, एक न एक दिन मृत्यु को प्राप्त होंगे; यदि वे इस बात को समझ जाते तो उनके मतभेद यकायक समाप्त हो जाते।
> अपराधी की इस सचेत अवहेलना और यह सोच कि उसके कृत्य उसके अपने हैं, को जोड़ कर देखने से घृणा मिट जाती है।[18]

वैयक्तिक स्तर पर शांति की अवधारणा दो प्रकार की होती है : (क) पूर्ण शांति, और (ख) अधूरी शांति। पूर्ण शांति की प्राप्ति पर हमें निरपेक्ष स्वतंत्रता मिल जाती है। परिणामस्वरूप हमें ईश्वर, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य मिल जाता है। अपूर्ण शांति मिलने पर हमें बाह्य विघ्न बाधाओं और उत्तेजनाओं एवं व्याकुलताओं से मुक्ति मिल जाती है। इससे हमें विरोधी इच्छाओं और दुराग्रही मनोवेगों से सापेक्ष स्वतंत्रता मिल जाती है।

शांति की प्राप्ति को वैयक्तिक उपलब्धि मानने का अर्थ है कि व्यक्ति आंतरिक रूप से विवेकशील या स्वस्थ है, जिसका परिणाम यह है कि (क) वह भविष्य की चिंताओं, घटनाओं, और वर्जनाओं से मुक्त है, (ख) मन की उलझनों से मुक्त है, (ग) वह मानसिक रूप से संतुष्ट है, (घ) उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं। शांति की प्राप्ति से मनुष्य को अपने घमण्ड और आंतरिक चंचलता पर क़ाबू पाने में सहायता मिलती है। अपने आंतरिक द्वंद्व पर क़ाबू पाने के हिसाब से पता चलता है कि व्यक्ति ने कहाँ तक शांति की प्राप्ति की है।

वैयक्तिक शांति के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि समुदाय, समाज, राज्य, राष्ट्र, या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सभी कार्य व्यक्ति द्वारा ही किये जाते हैं। व्यक्ति या प्रतिनिधि में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह 'सभी विकल्पों कि बारे में सोच-समझ कर, जान-बूझकर अपने कार्य के लिए

[16] वही : 134.

[17] सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1947) : 9.

[18] पहली तीन उक्तियाँ सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1997) से उद्धृत. चौथी उक्ति *अंगुत्तरनिकाय* 3 से है.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 109

कोई मानक कसौटी निर्धारित करके, कोई निश्चय करे।'[19] जो व्यक्ति शांत होता है वह अपने समाज में आक्रामक व्यवहार नहीं करता। शांत मन:स्थिति वाले लोगों का समुदाय, अन्य समुदायों, समाजों, राज्यों और राष्ट्रों के साथ शांत व्यवहार ही करता है। विभिन्न समाजों के बीच इस प्रकार का शांत व्यवहार शांत संसार को जन्म देता है। सम्भवत: इसी दृष्टिकोण के कारण कांट ने क़ानूनों के श्रेणी में दीवानी-क़ानूनों और राष्ट्रों के क़ानूनों के साथ विश्व-नागरिक क़ानूनों को भी सम्मिलित कर लिया था। इस क़ानून के अनुसार 'मनुष्यों और राज्यों' को 'मनुष्यों को उनके बाह्य आपसी संबंधों के आधार पर मनुष्यों के सार्वभौमिक राज्य के नागरिक' का दर्जा दिया गया है।[20] सामाजिक सद्‌गुण के रूप में शांति की प्राप्ति संसार के सभी नागरिकों को सुरक्षा, स्थायित्व एवं सुख प्रदान करती है। ऐसे शांतिपूर्ण संसार में सभी नागरिक सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए कार्यरत रहते हैं, वे विरोधियों में बीच-बचाव करते हैं, सहिष्णुता को बढ़ावा देते हैं, प्रतिद्वंद्वी के बीच सामंजस्य खोजते हैं, अपरिहार्य समस्याओं के लिए अवकाश रखते हैं, विभिन्न मतों और वैचारिक मतभेदों में समन्वय को पुर्स्थापित करते हैं, और अशुभ को शुभ से प्रतिस्थापित करते हैं।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैयक्तिक शांति के समान हमें सामाजिक शांति को पाने और उसके बने रहने के लिए भी निरंतर प्रयासरत रहना पड़ता है। किसी एकल व्यक्ति की वैयक्तिक शांति और सामाजिक शांति में अंतरंग संबंध होता है। दुर्भाग्यवश कांट इस सहसंबंध पर विचार नहीं करते। यदि हम किसी विरोधों से भरे समाज में, या ऐसे समाज में रहते हों जिस पर अन्य समाजों, राज्यों या राष्ट्रों से युद्ध का खतरा मँडराता रहता हो, या जो युद्ध में संलग्न हों तो आपसी शांति को पाना और उसे बनाए रखना असम्भव होता है। इसी प्रकार यदि किसी राज्य में व्यक्तियों की मन:स्थिति शांत नहीं है, और वे सदैव लालच और क्रोध या घृणा से घिरे रहते हैं तो सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थायी शांति लगभग असम्भव है। कांट के अनुसार इसका कारण यह है कि 'राज्य मनुष्यों का ऐसा समाज है जिस पर कोई अन्य शासन नहीं कर सकता।'[21] अंतत: हम कैम्पबेल स्मिथ की इस बात से सहमत हो सकते हैं कि 'मानवीय कुवृत्तियाँ और उनके राग-द्वेषों का स्वाभाविक परिणाम युद्ध है।'[22] निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर शांति की स्थापना मात्र मन-लुभावन बातों और व्याख्यानों द्वारा नहीं की जा सकती, बल्कि उसके लिए तो मनुष्यों को अपने
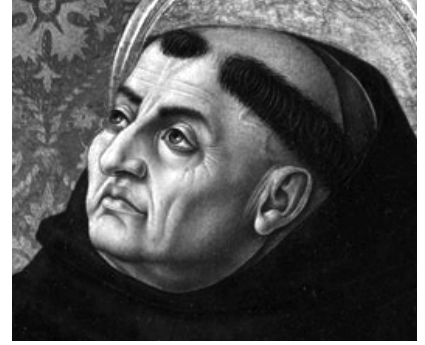
इन सभी दार्शनिकों का यह मानना है कि वैयक्तिक शांति के लिए हमें संघर्ष करना पड़ता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें कोशिश करनी पड़ती है। गॉस्पल के अनुसार शांति 'एक ऐसा वरदान है जिसे खोजना पड़ता है, जिसे सुरक्षित रखना पड़ता है।' थॉमस अकुइनेस के शब्दों में शांति 'ईश्वर की देन है और वह इस जन्म में ही प्राप्य है।' वह 'प्राप्य' है उसे 'प्राप्त, किया जा सकता है, वह कोई प्राकृतिक स्थिति नहीं है। वह कोई ऐसी स्थिति नहीं है जो प्रदत्त हो, जो प्राकृतिक हो, जो विद्यमान हो, जो तत्काल उपलब्ध हो। शांति की स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें संघर्ष, बल्कि कड़ा संघर्ष, करना पड़ता है।

[19] सैमुएल एम. थॉम्पसन (1973), 'इंट्रोडक्शन' : 16.
[20] कांट, वही : 18.
[21] वही : 15.
[22] वही : 105.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 110

स्वाभाविक प्रवृत्तियों, मनोवेगों, और राग-द्वेषों से उबरने के उपायों का प्रशिक्षण देना होगा। कांट के अनुसार, 'यह हमारा कर्तव्य है कि हमें इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मेहनत करें, क्योंकि यह कोई मृगमरीचिका नहीं है।'[23]

दो विश्व-युद्धों की त्रासदी भुगतने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणापत्र में वैयक्तिक शांति के महत्त्व को समझते हुए उसकी प्रस्तावना में लिखा कि 'चूँकि युद्ध का जन्म मनुष्य के मन में होता है, इसलिए शांति की सुरक्षा के प्रयास उनके मन से ही आरम्भ किये जाने चाहिए।' यदि यह विचार सच होता तो यह प्रश्न उठता है कि क्या केवल मनुष्य के प्रशिक्षण द्वारा शांतिपूर्ण संसार की स्थापना की जा सकती है? यदि ऐसा होता तो भारत में जहाँ जैन और बौद्ध दर्शन सदियों से शांति की शिक्षा देते आ रहे हैं, घृणा न होती, कोई भी क़त्ले-आम न होता, छिट-पुट झगड़े और युद्ध न होते। भारत का इतिहास गवाह है कि जब ये दर्शन अपने चरम पर थे तब इनके अनुयायियों या एक ही मत के अनेक सम्प्रदायों के बीच कई हिंसक लड़ाइयाँ और अनेक युद्ध लड़े गये। धार्मिक इतिहास को खँगालने से यह पता चलता है कि शांति, प्रेम, और सामंजस्य की राह दिखाने वाले बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, और मोहम्मद जैसे धार्मिक गुरुओं के अनुयायियों में कालांतर में भीषण युद्ध हुए। धार्मिक इतिहास के अध्ययन से हमें यह भी पता चलता है कि समय के साथ-साथ, स्थायी और स्वाधीन संस्थाओं के अभाव में, शांति बनाए रखने की शक्ति कम और क्षीण होती जाती है, बल्कि यूँ कहें कि अंततः शांति, अशांति के सम्मुख हार जाती है। भारतीय द्वीप से बौद्धों का निष्कासन, शैवों द्वारा जैनों का नरसंहार, युरोप में प्रोटेस्टेंटों और कैथॅलिकों में, और एशिया अपितु जगत में शिया और सुन्नियों के बीच भीषण युद्ध से यह सिद्धांत बिल्कुल बेकार साबित हो गया है कि मनुष्यों का हृदय परिवर्तन करके, उन्हें शांति का प्रशिक्षण दे कर, और उन्हें यह सिखा कर कि शांतिपूर्ण संसार हम सबके लिए लाभकारी है, युद्धों को समाप्त किया जा सकता है।

अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विचारकों की मान्यता है कि युद्ध अपरिहार्य है और शांति की अल्पकालीन स्थिति भी युद्ध का फल ही है। किंतु गाँधी ऐसा नहीं मानते। उनका कहना है कि 'शांति की विफलता का परिणाम युद्ध होता है। हमारा सम्पूर्ण प्रयास शांति की स्थापना के लिए होना चाहिए।'[24] कांट की प्रसिद्ध पुस्तक *परपचुअल पीस* की अनुवादक मैरी कैम्पबेल स्मिथ भी निरस्त्रीकरण की पक्षधर नहीं हैं। उनका कहना है कि 'अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं युरोपीय वाणिज्य के एशियाई राज्यों द्वारा विघटन की प्रक्रिया से युरोप को अपनी रक्षा करनी चाहिए।'[25] युरोप के संदर्भ में भी वे एक अंतिम निश्चयात्मक युद्ध के पक्षधर हैं। उनका कहना है कि 'युरोप की एकता के लिए सम्भवतः अभी एक और निश्चयात्मक युद्ध की आवश्यकता है। ईश्वर करे कि युरोप उस युद्ध से बच निकले और निडर होकर अपने सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर हो।'[26]

युद्ध को महिमामण्डित करने वाले सैन्यवादी, युद्ध के महिमामण्डन का घोर खण्डन और युद्ध का विरोध करने वाले शांतिवादी, सभी धर्म और दर्शन, धर्म के भीतर के अंतःकलहों और अन्य धर्मों से अपने सिद्धांतों और अन्य धार्मिक क्रियाकलापों को ऊँचा मनवाने के लिए किये गये युद्धों को युक्तियुक्त युद्ध यानी धर्मयुद्ध कहते हैं। धर्मयुद्ध में हमारा संलिप्त होना अनिवार्य होता है, क्योंकि वह हम पर थोपा गया होता है। आत्मरक्षा हेतु या अपने औचित्यपूर्ण हक़ को पाने के लिए हमें धर्मयुद्ध करना पड़ता है। आपको इसमें भाग लेना ही पड़ता है। इसमें भाग लेना हम सब का सर्वोच्च कर्तव्य है। ईश्वर के नाम पर, शुभ, सत्य और न्याय के लिए ऐसा युद्ध लड़ा जाता है। ऐसे युद्ध

---

[23] वही : 157.

[24] *हरिजन*, 12 जनवरी, 1947 : 489.

[25] 'प्रीफ़ेस' : 9.

[26] वही : 10.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 111

के बारे में प्लेटो कहते हैं कि 'युद्ध एक गम्भीर विषय है, शांति की स्थापना के लिए हमें इसे भली भाँति समझना चाहिए।'[27] *दीघ निकाय सुत्त* में धर्मयुद्ध की पूर्वमान्यताओं का विवरण दिया गया है। ये पूर्व-मान्यताएँ हैं :

(क) संघ के बचाव के लिए, सिद्धांत के बचाव के लिए, और आक्रमणकारियों के निरंतर आक्रमणों से होने वाली क्षति से बचाव के लिए।

(ख) कुछ लोगों की क्षति के मुक़ाबले अधिसंख्यों के बचाव के लिए

(ग) स्वयं को मारे जाने से बचने के लिए।

धर्मयुद्ध को औचित्यपूर्ण मानने के अन्य कारण हैं :

(क) सत के स्वरूप का प्रातिभासिक होना,

(ख) नियति का पूर्वनिर्धारित होना।

उपरोक्त प्रत्येक कारण की पूर्वधारणा है कि युद्ध करना और किसी को मारना तब औचित्यपूर्ण होता जब वह किसी घृणा या दुर्भावना पर आधारित न होकर करुणा या दया पर आधारित हो, या फिर बिना विचारे ही किया गया हो। यह विचित्र ही है कि हिंदू धर्म, जो हमें यह सिखाता है कि मनुष्य का आदर्श होना चाहिए : न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न च पुनर्भवं, कामये दुःख तप्तानां प्राणिनां आर्तृनाशनम, वह भी धर्मयुद्ध को औचित्यपूर्ण मानता है।

किंतु निम्नलिखित कारणों से धर्मयुद्ध की अवधारणा ही भ्रामक है। पहला कारण है कि कौन यह निर्धारित करता है कि युद्ध का औचित्य है या नहीं? किसी संदर्भ में ही, किन्हीं मूल्यों या जीवन के ध्येय पर ही, कोई भी औचित्य, औचित्यपूर्ण होता है। जैसा कि गाँधी 14 अक्टूबर, 1926 के *यंग इंडिया* में लिखते हैं : 'अंत में हम बुद्धि से नहीं बल्कि हृदय से प्रेरित होते हैं। पहले दिल किसी निष्कर्ष को स्वीकारता है, फिर बुद्धि उस निष्कर्ष के युक्ति-युक्त तर्क ढूँढ़ लेती है। विश्वास पहले होता है फिर तर्क? मनुष्य जो नहीं करना चाहता अकसर उसके कारण खोज लेता है।' विशेषतः अपने द्वारा अपनाए गये नियमों और सिद्धांतों के संबंध में ऐसा ही होता है। उनके लिए तर्क देते हुए हम इस ख़तरनाक सिद्धांत का सहारा लेते हैं कि यदि आप मेरे सिद्धांत को समझ जाएँगे तो आप यह जान जाएँगे कि मेरा नियम या सिद्धांत प्रत्येक विषय की व्याख्या कर सकता है और प्रत्येक समस्या का समाधान कर सकता है। इससे एकांतिकता, दम्भ, और अकाट्यता की भावना का जन्म होता है, जिससे सामाजिक संतुलन बिगड़ जाता है और युद्ध का उद्भव होता है। उदाहरणार्थ, यहूदी, ईसाई और इस्लाम जैसे सामी धर्मों में यहूदी स्वयं को 'वरीयता

राधाकृष्णन भी मानते हैं कि 'शांति अधिकार में आयी हुई कोई वस्तु नहीं है, अपितु वह तो निरंतर बने रहने वाली चाहत है।' इसी प्रकार भारतीय ऋषि-मुनियों की मान्यता भी यही है कि शांत मनःस्थिति प्राप्त करने कि लिए हमें निरंतर प्रयासरत रहने पड़ता है। शांत मनःस्थिति की प्राप्ति मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श है। उनके अनुसार आत्मसंयम और लोकातीत दूरदृष्टि ही शांत मनःस्थिति की प्राप्ति के साधन हैं। दर्शन के कुछ मतों के अनुसार ऐसी मनःस्थिति किसी संबंधित विचार को आत्मसात् करके अथवा उसके प्रति पूर्ण समर्पण से प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यह समर्पण किसी देवता या ईश्वर के किसी रूप, या गीता, बाइबिल या क़ुरान जैसे किसी ग्रंथ के प्रति हो सकता है। अथवा कर्म-सिद्धांत जैसे किसी नियम को अपनी जीवन-शैली बना कर; या आत्म-ज्ञान या जगत-ज्ञान से; या फिर इन सब को मिला कर ऐसी मनःस्थिति पाई जा सकती है।

[27] प्लेटो, *लॉज़,* VII, 803c

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 112

प्राप्त जन' कहते हैं। ईसाइयों की मान्यता है कि दूसरे धर्मों की तुलना में उनका धर्म ही सही धर्म है। इस्लाम के अनुयायियों की यह मान्यता है कि ईश्वर के दूत मुहम्मद ही आदम से लेकर नूह, मूसा, और ईसा से बनने वाली शृंखला की अंतिम कड़ी हैं, और संसार के लोगों को धर्म-परिवर्तन और दासता के बीच चुनाव करना होगा। उनका दृढ़ विश्वास है कि इस्लाम सारे विश्व पर राज करेगा। स्पष्टत: जो सिद्धांत अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं और अपने एकांतिक होने का दावा करते हैं वे किसी भी अन्य सिद्धांत, धर्म या दृष्टिकोण को हेय समझते हैं और उसके प्रति असहिष्णु होते हैं। अत: वे वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते। वे यह निर्धारित नहीं कर सकते कि क्या औचित्यपूर्ण है, और क्या नहीं।

धर्मयुद्ध की अवधारणा को सही न मानने का दूसरा कारण यह है कि धर्मयुद्ध की पूर्व मान्यता है कि युद्ध मध्यस्थता कर सकता है— वह वार्ता का विकल्प है। कांट के समय में सम्भवत: यह कहना सही होगा, किंतु अब ऐसा कहना सही नहीं है, क्योंकि आधुनिक परमाणु युद्धों से हम अपनी इच्छित वस्तु नहीं पा सकते। आधुनिक युद्ध में सैनिक कार्रवाई के बाद न तो विजयी होने वाला बचता है न ही हारने वाला। परमाणु युद्ध का परिणाम एक-दूसरे का अनिवार्य विध्वंस (एमएडी या म्युचुअली एश्योर्ड डिस्ट्रक्शन) है। युद्धों के इतिहास का सरसरी तौर पर निरीक्षण करने से हमें पता चल जाता है कि किसी भी युद्ध से किसी भी समस्या का हल नहीं निकला, उस समस्या का तो बिल्कुल भी नहीं जिसके कारण वह युद्ध शुरू हुआ था। दूसरी ओर समस्याओं का समाधान और विरोधों का निदान खुली वार्ताओं से होता है। खुली वार्ता में विरोध से शुरू होकर बातचीत के दौरान सहमति प्राप्त होती है। हमें यह मान कर चलना होगा कि विरोध अवश्यम्भावी होते हैं। हमें यह जानना होगा कि 'विरोधों का न होना शांति नहीं है, अपितु विरोधों के साथ जीना सीखना शांति है',[28] और यह स्वीकारना होगा कि विरोधों का सुलझाना शांति है। मनुष्य युद्ध में नहीं, अपितु संधि वार्ता में मोल-तोल करके, समझौता करके, वार्तालाप द्वारा, समायोजन और सहमति द्वारा, विरोधों के साथ जी सकता है, या आपसी मतभेदों को सुलझा सकता है।

धर्मयुद्ध की अवधारणा के अनुचित होने का तीसरा कारण यह है कि 'सही और ग़लत', 'न्यायोचित और अन्यायपूर्ण' की अवधारणा 'मैं और तुम', 'हम और वह' में भेद पर आधारित है। इसी अवधारणा के कारण हममें यह भावना उत्पन्न होती है कि 'मैं हमेशा सही हूँ' और 'तुम और वे सदैव ग़लत हैं। किंतु जब हम समाज को जिसके हम अभिन्न भाग हैं को उसकी सम्पूर्णता में समझते हैं, तो सम्पूर्ण संसार एक इकाई जान पड़ता है, जिसमें कोई सँकरी दीवारें नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से संसार का प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से भिन्न नहीं होता, बल्कि सभी का एक-दूसरे से तादात्म्य होता है; क्योंकि प्रत्येक समूह या राष्ट्र का उद्देश्य प्रगति करना और सम्पूर्ण मानवता की भलाई करना है, इसलिए उन सबमें तादात्म्य है न कि भेद। मनुष्यों की एक जैसी रुचि अच्छे होने के कारण औचित्यपूर्ण होने या अनौचित्यपूर्ण होने, अच्छे या बुरे होने का प्रश्न ही नहीं उठता। भारतीय मनीषियों ने बहुत पहले, सम्भवत: विश्व में सबसे पहले, मनुष्यों की रुचियों और उद्देश्यों की एकता को मान्यता दी थी। इसीलिए उन्होंने अद्वैत की संकल्पना की थी। उनके अद्वैतिक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप उनकी मान्यता थी कि कोई ग़ैर (अन्य) है ही नहीं। उनका कहना था कि 'अहम् ब्रह्मास्मि तत त्वं असि'। अद्वैत में अपनी निष्ठा के कारण ही उन्होंने कहा : 'एको देव:', अर्थात् सभी प्राणियों की अंतरात्मा में एक ही ईश्वर व्याप्त है। इन मनीषियों ने न केवल प्राणियों कि एकत्व की चर्चा की अपितु संसार की एकता की बात की— 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। उन्होंने सिखाया कि मानव 'सर्व स्वदेशो भुवनत्रिवाम' यानि हम सभी एक ही माता-पिता की संतान हैं, इसलिए हम एक ही परिवार के सदस्य हैं। किसी व्यक्ति में इस भाव के जागरण से ही संघर्ष के लिए कोई स्थान नहीं बचता, न्यायपूर्ण और

[28] सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1947).

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 113

अन्यायपूर्ण, उचित या अनुचित का भेद समाप्त हो जाता है। संसार में संकीर्ण विभाजन लुप्त हो जाता है। तादात्म्य की अनुभूति से सांस्कृतिक और वैचारिक मतभेद विलीन हो जाते हैं। समुदायों में, राष्ट्रों में, जातियों में, विचारधाराओं में युद्ध असम्भव हो जाते हैं।[29]

अत:, धर्मयुद्ध, या शांति की स्थापना के लिए युद्ध संसार में शांति की स्थापना करने में सहायक नहीं हो सकता। न ही केवल वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति से शांति की स्थापना हो सकती है। इस बारे में विट्गेंस्टाइन का कहना है :

> विज्ञान एवं उद्योग, और उनकी प्रगति आधुनिक संसार की सर्वाधिक टिकाऊ चीज़ें हो सकती हैं। सम्भवत: वर्तमान और भविष्य में लम्बे समय तक विज्ञान एवं उद्योग के सम्भावित पतन की अटकल लगाना एक स्वप्न मात्र है और सम्भवत: विज्ञान एवं उद्योग यातना-प्रक्रिया के बाद संसार में एकजुटता प्रदान करेंगे। मेरा अभिप्राय है कि उसका एक इकाई में ही समावेश कर देंगे, यद्यपि वह एक ऐसी इकाई होगी जिसमें शांति का कोई स्थान नहीं होगा। क्योंकि विज्ञान एवं उद्योग युद्धों का निर्धारण करते हैं, या फिर अभी तो यही प्रतीत होता है।[30]

प्लेटो के प्रधान सद्गुणों की भाँति शांति भी एक ऐसी स्थिति है जिसके बिना कोई भी, किसी भी उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन को समृद्ध करने वाली, शिशु की मुस्कान जैसी, परिवार और समाज को एकजुट रखने वाली, मनुष्य की प्रगति, नैतिकता, सत्य की विजय और शुचिता की कारक, ... यद्यपि प्लेटो कहते हैं कि 'हमें अपना अधिकतर जीवन शांतिपूर्ण परिस्थितियों में शांतिपूर्वक बिताना चाहिए', फिर भी वे अपनी पुस्तकों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं करते कि शांति की अवधारणा क्या है।

फिर संसार में शांति की स्थापना कैसे हो सकती है? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले आइए हम युद्ध के कारणों का विश्लेषण करें। गाँधी की यह मान्यता थी कि राष्ट्रों में संघर्षों और घृणा का मूल कारण अज्ञान है। उनका कहना था कि 'जिस राष्ट्र से हम घृणा करते हैं उसे हम जानते ही नहीं।'[31] राधाकृष्णन मानते हैं कि स्वयं राष्ट्र की अवधारणा ही युद्ध का कारण है। वे राष्ट्र की संकल्पना की तुलना एकांतिक धर्म से करते हैं। उनके अनुसार जैसे एकांतिक धर्म अपने अनुयायियों को आदेश देता है कि अपने ईश्वर के अलावा किसी अन्य ईश्वर को स्वीकार न करें, उसी प्रकार राष्ट्र अन्य मानव जाति की अपेक्षा अपने नागरिकों से अटल देशभक्ति का आदेश देता है। राधाकृष्णन के अनुसार 'देशभक्ति छद्मवेश में घृणा है। इस घृणा को स्वीकारयोग्य आडम्बरपूर्ण शब्दों में साधारण व्यक्तियों को परोसा जाता है। इसका प्रदर्शन मन-लुभावन राष्ट्रभक्ति के वीररसपूर्ण गीतों द्वारा, सोने, चाँदी, पीतल के पदकों द्वारा और धारदार कपड़े से बने तमगों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।'[32] राष्ट्रवाद की स्वाभाविक प्रकृति यह है कि 'दूसरों को नीचे दिखाया जाए। इसमें अपने देश को अन्य देशों से उत्तम दिखने की होड़ निरंतर चलती रहती है।'[33] देशभक्ति के समान राष्ट्रवाद भी एक कृत्रिम मनोवेग है। यह कोई नैसर्गिक प्रवृत्ति नहीं है। राधाकृष्णन के अनुसार देशभक्ति और राष्ट्रवाद के कृत्रिम मनोभाव हमें

[29] वही.
[30] लुडविग विट्गेंस्टाइन (1998) : 72.
[31] एम.के. गाँधी (1997).
[32] सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1947) : 228.
[33] वही : 16.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 114

'नीचता, क्रूरता और हिंसा के राष्ट्र के उद्देश्य से जुड़ने के बाद हमें बिल्कुल साधारण दैनंदिन बातें लगती हैं।'[34] जब तक हम ग़लती से यह मानते रहेंगे कि हमें 'यूनानियों के नगर-राष्ट्र, यहूदियों की वरीयताप्राप्त जाति, और आधुनिक युरोप के राष्ट्रवाद की परम्परा' को आगे बढ़ाना है तब तक हमें युद्ध से मुक्ति नहीं मिलेगी।'[35]

इसलिए संसार में स्थायी शांति स्थापित करने के लिए गाँधी ने संसार में एक सभ्यता, एक संस्कृति एक समाज के विकास की सिफ़ारिश की है। राधाकृष्णन भी गाँधी के मत का समर्थन करते हुए कहते हैं, 'हमें संसार के बारे में मानचित्रों और बाज़ारों की बात न करके पुरुषों और महिलाओं की बात करनी चाहिए।'[36] गाँधी की भाँति राधाकृष्णन भी राजनीति का त्याग नहीं करते। गाँधी के अनुसार वे भी मानते है कि राजनीति 'व्यावहारिक धर्म' है क्योंकि 'धर्म में मानवीय भाईचारे के बारे में आस्था निहित होती है, और इस भाईचारे की स्थापना के लिए राजनीति से बढ़ कर कुछ नहीं हो सकता।'[37] वे राजनीतिक साधनों से और राजनीतिक क्रिया-कलापों द्वारा 'संसार में ऐसी संघीय सरकार की स्थापना करने की सलाह देते हैं जिसके पास ऐसी शक्तियाँ हों जिनसे वह राष्ट्रों कि बीच क़ानून व्यवस्था को स्थापित एवं कारगर कर सकें। स्थायी शांति बनाए रखने का यही एकमात्र व्यावहारिक ढंग है।'[38] और इस प्रकार की संघीय सरकार की स्थापना करने कि लिए हमें 'अपनी प्रभुसत्ता का एक अंश केंद्रीय सरकार को सौंपना होगा ताकि उपनिवेशवादी अधीनता, नस्लीय एवं जातीय अलगाव, आर्थिक अनुसंधान, यहाँ तक कि धार्मिक असहिष्णुता के नाम पर होने वाले अन्याय को उखाड़ फेंका जा सके।'[39]

उपरोक्त निष्कर्ष *ऋग्वेद* की ऋचा 10.191 से भी निगमित होता है। इस ऋचा के अनुसार :

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥
समानो मंत्रः समितिः समानी समाना मनो सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मन्त्रये वो समानेन वोहविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

(सबका चिंतन-मनन और विचार एक हों। विभिन्न विषयों और समस्याओं पर विचार करने के लिए सबका संगठन, सबकी संगोष्ठी, अथवा सभा एक हो। सबका एक मन हो। इन सभासदों का चित्त भी सबके साथ परस्पर मिला हुआ हो। मैं (राजा अथवा उपदेशक) तुम सबको एक ही मंत्र, एक ही विचार, एक ही सलाह दे रहा हूँ कि जिस प्रकार सब देवता एक ही अग्नि अथवा यज्ञकुण्ड से अपनी हवि ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी एक ही स्थान पर एक साथ मिल कर अन्न ग्रहण करो। इसी के लिए मैं तुम्हारा आह्वान कर रहा हूँ।)

केवल और केवल इस सलाह को मानने से और इस पर कार्रवाई करने से ही संसार में अनवरत और चिरस्थायी शांति स्थापित हो सकती है। धर्मयुद्ध या अधर्मयुद्ध से दीर्घकालीन शांति स्थापित नहीं हो सकती। कांट भी यह स्वीकार करते हुए कहते हैं कि संधिपत्रों पर हस्ताक्षर करने, या शांति स्थापना की प्रसंविदाएँ, या अंतर्राष्ट्रीय क़ानूनों, रीति-रिवाजों, नियमों और अधिनियमों को अपनाने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि ये सब 'संवैधानिक, अंतर्राष्ट्रीय और सर्वदेशीय क़ानूनों के ऐसे सैद्धांतिक पक्ष हैं जो 'सहज ही अव्यावहारिक विचारों में खण्डित हो जाते हैं।'[40] चिरस्थायी शांति की स्थापना ज़ोर-

[34] वही : 14.
[35] वही : 80-81.
[36] वही : 19.
[37] वही : 182.
[38] वही.
[39] वही.
[40] इमानुएल कांट (1972) : 165.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 115

ज़बर्दस्ती से नहीं की जा सकती। हमें 'चिरस्थायी शांति-स्थापना के आदर्श को अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार धीरे-धीरे आगे बढ़ाना होगा।'[41] वे कहते हैं कि 'पहले-पहल हमें शुद्ध व्यावहारिक तर्कों और उनके औचित्य के साम्राज्य की खोज करनी होगी। इस खोज के फलस्वरूप हमें चिरस्थायी शांति का वरदान स्वत: ही मिल जाएगा।'[42]

शुद्ध व्यावहारिक मीमांसा ऋग्वेद की उक्त प्रार्थना जैसी है जिसमें देवताओं से यह प्रार्थना की गयी है कि वे हमें आदेश दें कि हम सब अपने साथियों को प्रेम करें, और उनके अधिकारों की रक्षा करें। हम इसे अपना कर्तव्य समझें। कांट इस बात को कुछ ऐसे कहते हैं, 'अपने संगी-साथियों को प्रेम करना और उनके अधिकारों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।'[43] वे अपने संगी-साथियों से प्रेम को 'सोपाधिक' मानते हैं, किंतु व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा को 'निरूपाधिक, पूर्णत: आदेशात्मक कर्तव्य मानते हैं।'[44] कांट 'अधिकारों की रक्षा' को इतना अधिक महत्त्व देते हैं कि वे यह आदेश देते है कि 'जो व्यक्ति मन से कल्याणकारी कार्यों में जुटा होता है उसे प्रथमत: यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसने (अधिकारों की रक्षा के आदेशों) का उल्लंघन नहीं किया है।'[45] व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा के महत्त्व को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, क्योंकि 'मनुष्यों को अधिकारों को पवित्र मानना चाहिए चाहे प्रशासन को उसकी कोई भी क़ीमत चुकानी पड़े। अधिकारों के बारे में कोई बीच का रास्ता नहीं है। हम अधिकारों और स्वार्थपरायणता के बीच कोई मध्य मार्ग नहीं होता यानी कोई ऐसा अधिकार नहीं होता जिसे प्रयोजनपरक कारणों से अपनाया जा सके।'[46] विश्व के किसी भी भाग में किसी अधिकार का कोई भी उल्लंघन विश्व के अन्य भागों में अपना प्रभाव डालता है। कांट के समय में भी ऐसा होता था, पर आज के संसार में तो यह बेहद तुरंत गति से होता है। कांट वैयक्तिक अधिकारों को वैश्विक अधिकार मानते हैं। वे वैश्विक अधिकारों को सार्वजनिक अधिकारों से उच्च कोटि के या काल्पनिक अधिकार नहीं मानते। वैश्विक अधिकार दैनंदिन अधिकार ही होते हैं। बेशक वे अपनी पुस्तक के निष्कर्ष में कहते हैं कि वैश्विक या सार्वजनिक अधिकार 'अनिवार्यत: जनसाधारण के सामान्य अधिकार ही होते हैं और इसीलिए चिरस्थायी शांति की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वैश्विक क़ानून की शर्तें पूरी करने से ही हम यह कहकर अपनी पीठ थपथपा सकते हैं कि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के समीप पहुँच रहे हैं।'[47]

कांट के अनुसार उचित या अनुचित युद्ध 'घाटे का सौदा' है, क्योंकि युद्ध करने के निर्णय में यह निहित होता है कि युद्ध में लिप्त लोगों को 'अपनी-अपनी सम्पत्ति से युद्ध पर आने वाला ख़र्चा उठाना पड़ता है; युद्ध के बाद युद्ध में आने वाली तबाही की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे स्वयं शांति को भी ख़तरे में डालने वाले क़र्ज़ में दब जाते हैं और उस पर भी सदैव सम्भावित आगामी युद्धों की आशंका से वे कभी भी क़र्ज़े से उबर नहीं पाते।'[48] व्यावहारिक मीमांसा से पता चलता है कि प्रत्येक राष्ट्र की पृष्ठभूमि में वाणिज्यिक गतिविधि छिपी होती है क्योंकि 'आर्थिक शक्ति सम्भवत: सबसे अधिक विश्वसनीय होती है।' वाणिज्यिक गतिविधि से हमें यह भी पता चलता है कि युद्ध एक बेहद महँगी गतिविधि है और वाणिज्यिक गतिविधि युद्ध से मेल नहीं खाती।'[49] कांट

[41] वही : 177–178.
[42] वही : 177–178.
[43] वही : 194.
[44] वही : 194.
[45] वही : 194.
[46] वही : 183.
[47] वही : 142.
[48] वही : 123.
[49] वही : 157.

08_ashok_done:Layout 1 11-03-2020 13:50 Page 116

के अनुसार वाणिज्यिक गतिविधि और प्रगति, और आर्थिक ह्रास और मंदी के द्वंद्व से हमें यह सीख मिलती है कि यह हमारा नैतिक कर्तव्य है कि हम चिरस्थायी शांति की स्थापना के लिए कार्यरत हों और संसार में ऐसी व्यवस्था की रचना करें जिसमें अबाध शांति रहे। ऐसी व्यवस्था की स्थापना तभी हो सकती है जब हम गाँधी के इस अनुभव और निष्कर्ष से सहमत हों कि 'अनेक बार मैंने पाया है कि कोई भी विचार-पद्धति सही निर्णय का दावा नहीं कर सकती। हम ग़लती कर सकते हैं, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने निर्णय को संशोधित करने के लिए सदैव तैयार रहें।' विश्व में असंख्य सिद्धांत और विभिन्न मत हैं— उतने ही मत हैं जितने कि लोग, किंतु विश्व में 'निष्कपट और प्रामाणिक विचारों के लिए अवकाश होना ही चाहिए। अपने विरोधी को ठीक से समझना हमारा अपने और अन्यों के प्रति परम कर्त्तव्य है, और यदि हम दूसरों के विचारों से सहमत नहीं हैं तो हम यह तो कर ही सकते हैं कि उसके विचारों की हम क़दर करें, जैसे कि उसे हमारे दृष्टिकोण की क़दर करनी चाहिए।'

यही बात बर्ट्रेंड रसेल भी कहते हैं। अपने सत्तासीवें जन्म दिन पर बीबीसी को दिये साक्षात्कार में इस प्रश्न के उत्तर में कि आने वाली नस्लों के लिए वे क्या संदेश देना चाहेंगे— बर्ट्रेंड रसेल ने कहा कि उनका 'नैतिक संदेश होगा कि प्रेम करना बुद्धिमत्ता है, और घृणा करना मूर्खता है। संसार तेज़ी से अंतर्सबंधित होता जा रहा है। हमें एक-दूसरे कि प्रति सहिष्णु होना चाहिए। हमें इस बात को मानना होगा कि कुछ लोग ऐसी बातें करते हैं जो हमें पसंद नहीं होतीं। हमें एक-दूसरे के साथ जीना सीखना चाहिए। हम इसी ढंग से इकट्ठे जी सकते हैं। किंतु यदि हम संग-संग रहना चाहते हैं और एक साथ मरना नहीं चाहते तो हमें एक प्रकार की उदारता और सहिष्णुता को अपनाना अनिवार्य है। यह इस ग्रह पर जीवन कि लिए अत्यंत आवश्यक है।' कांट द्वारा सतत शांति की स्थापना कि लिए सुझाए गये संधि पत्र, या शांति-परसंविदाएँ, या अंतर्राष्ट्रीय क़ानून, नियम और अधिनियम तभी सम्भव हैं जब हम गाँधी और बर्ट्रेंड रसेल द्वारा सुझाए गये विभिन्न मतों के अस्तित्व और उनके प्रति सहिष्णुता को व्यावहारिक जीवन में उतारें। हमें गाँधी की इस बात को याद रखना चाहिए कि एकांतिकता, असहिष्णुता, और निरपेक्षता शांति के आधार नहीं हो सकते; न ही शांति के आधार उदारतावादी नारे और झूठे या दिखावटी सद्भावना-प्रदर्शन हो सकते हैं। संसार में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब मनुष्य अपने अंतर में ऐसा परिवर्तन करे जिससे उसका मन शांत हो सके। *भगवद्गीता* (6.33) में कृष्ण मानते हैं कि 'मन कठिनता से वश में आने वाला है।' उसे वश में करने के लिए 'निरंतर अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता है।' जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि शांति हम सबका आंतरिक गुण है और हमें शांति की खोज बाह्य जगत में न करके अपने अंतर में ही करनी है, तब तक संसार में शांति स्थापित नहीं हो सकेगी। तीस जनवरी को *यंग इंडिया* में लिखे अपने लेख में गाँधी ने इसी बात को निम्नलिखित शब्दों में कहा, 'संसार में शांति स्थापना मनुष्यों के दिलों में अहिंसा और शांति की लौ जला कर ही की जा सकती है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसे ही राष्ट्र होंगे। और जैसे राष्ट्र होंगे वैसा ही संसार होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि परमाणुओं का एक नियम हों और जगत का कोई और नियम हो।'

संदर्भ

इमानुएल कांट *(1972), परपचुअल पीस : अ फ़िलॉसोफ़िकल एस्से,* (अनु.) एम. कैम्पबेल स्मिथ, गारलैंड पब्लिशिंग, न्युयॉर्क और लंदन.

एम.के. गाँधी (1997), *हिंद स्वराज ऐंड अदर राइटिंग्स,* एंथॅनी जे. पारेल (सं.), केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

लुड्विग विट्गेंस्टाइन (1998), *कल्चर ऐंड वैल्यू,* अनु: अशोक वोहरा, इंडियन कौंसिल ऑफ़ फ़िलॉसोफ़िकल रिसर्च, नयी दिल्ली.

सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1947), *रिलीजन ऐंड सोसाइटी,* एलन ऐंड अनविन, लंदन.

सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1997), द *धम्मपद,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.